~~भ्रमरगीत के पद की ओर व्याख्याएँ~~

~~(3) थी!~~

हिन्दी साहित्य का इतिहास

द्विवेदी युग →

द्विवेदी युग को हम राष्ट्रीय जागरण का काल भी कह सकते हैं। अतीत के गौरव ने ही इस जागरण को बल प्रदान किया था। जनता का जातीय जागरण ही द्विवेदी युग की प्रधानभूत विशेषता है। काव्य के अन्तर से जनमानस को अनुगुंजित करते थे। हरिऔध का प्रिय प्रवास, रामचरित उपाध्याय रचित राम चरित चिन्तामणि एवम् मैथिली शरण गुप्त का साकेत प्रमाण स्वरूप उल्लेखनीय है। सत्यनारायण कविरत्न ने तत्कालीन भारत की दैनिक दशा से प्रभावित होकर भ्रमरगीत लिखा। भ्रमरगीत में माधुर्य और सामयिकता का अद्भुत मेल है। सरसता और भावुकता इसकी अन्य विशेषताएँ हैं। कविता का मूल विषय भारत की दयनीय दशा है। जिस सांस्कृतिक संधि को कवि ने वाणी दी है इससे स्पष्ट पता चलता है कि किस प्रकार विदेशी सांस्कृतिक से आक्रांत होकर भारतीय अपनी जातीय गौरव ~~को~~ भ्रमित हुए रहे थे। यह है अतीत तो वर्तमान बनता है। कविरत्न वर्तमान संस्कृति की दुर्बलता को स्वीकारते हैं तो हरिऔध प्राचीन संस्कृति के उच्चता का उद्घोष करते हैं। प्राचीन आख्यान को प्रिय प्रवास में सुंदर व्यापक प्रस्तुत की गई है। कृष्ण नेता है और राधा समाज सेविका। गुप्त जी की भारत भारती कवि की हिन्दू भाव और अतीत प्रेम को व्यक्तित्व करती है। इसमें आर्थिक और सामाजिक पतन का संकेत है। द्वापर और साकेत की कथा वस्तु भी प्राचीन है। द्वापर में कंस की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति और शोषणनीति का विरोध है। साकेत में उर्मिला का विरह गान तो है ही साथ ही साथ कृषक युद्ध एक भांति की समस्या भी है। द्विवेदी युग में काव्यों की प्रमुख विशेषता कलानुभरण की भ्रमता रविबाबू की गीतांजली का पर्याप्त परिलक्षित होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल गोपालशरण सिंह एवं मुकुट पाँडे आदि इस युग में हो चुका था। इस प्रकार, ये कवि नयी धारा के प्रवर्तक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। अतीत प्रेम के कारण ये कवि वर्तमान से अनभिज्ञ रहते।

अतः द्विवेदी युग का काव्य साहित्य

जातीय गौरव का और व्यक्ति की स्वतंत्र गरिमा की प्रतिष्ठा का साहित्य है।

गद्य → गद्य की विविध शैली इस युग में विकसित होती है। बाल मुकुन्द गुप्त, पद्म सिंह शर्मा, गोविन्द नारायण मिश्र, पूर्ण सिंह, श्याम सुन्दर दास, राजचन्द्र शुक्ल आदि ने अनेक शैलियों को जन्म दिया। आत्म कथात्मक, वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक एवं काव्यात्मक आदि अनेक शैलियों से हिन्दी पुष्ट सिद्ध हुई।

उपन्यास → इस युग में न केवल स्वरूप प्रौढ़ शैली अपितु गद्य के विविध रूप भी विकसित हुए। उपन्यास का विशेष विकास हुआ। कला एवं विषय की दृष्टि से यह युग उपन्यास के क्षेत्र में भारतेन्दु काल की तुलना में विशेष महत्व रखता है। आधुनिक मनोविज्ञान का सहारा लेखकों ने लिया और मानव मन तथा मानव जीवन का उच्च भाव से चित्रण किया। ~~सामाजिक जासूसी~~ ऐतिहासिक पौराणिक और चरित्र प्रधान उपन्यास इस युग में लिखे गये। किशोरी लाल गोस्वामी, प्रेमचंद, गोपाल राय गहमरी वृंदावन लाल वर्मा, चतुर सेन आदि ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद हैं। वस्तुतः कथा साहित्य में इस युग की प्रमुख देन प्रेमचंद हैं। स्वच्छन्दतावाद और ~~[illegible]~~ के धारा से पृथक प्रेमचंद यथार्थवादी धारा से जुड़े हैं। प्रेमचंद के अनेक उपन्यासों का प्रकाशन छायावाद काल में हुआ। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि युग धारा भिन्न ढंग का साहित्य प्रेमचंद लिख रहे थे। तब यह भी सत्य है कि इस युग से पृथक प्रेमचंद का साहित्य को नहीं समझा जा सकता है।

कहानी → हिन्दी कहानी का प्रारम्भ 1900 ई० में सरस्वती से होता है। यह द्विवेदी युग की देन है। पहले जो कहानियाँ लिखी जाती थीं उनमें कथा तो थी पर कहानीपन नहीं था। प्रारम्भ में सरस्वती में भी अंग्रेजी और संस्कृत की कहानियों का रूपान्तर प्रकाशित होता। तब धीरे धीरे सामाजिक ~~स~~ जीवन की कहानियाँ के क्षेत्र में स्वीकृत शैली और जीवन में घटित

वाली साधारण धारणाओं के आधार पर, कहानी लिखे जाने लगी। फलतः चरित्र प्रधान वातावरण प्रधान कथानक प्रधान कार्य प्रधान तथा प्रतीकवादी कहानियाँ प्रकाश में आयी। प्रेमचंद प्रसाद कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन राजाराधिका रमण सिंह आदि इस युग के आदि उस युग के प्रमुख कहानीकार हैं। 1916 ई० में प्रेमचन्द की पहली कहानी पंच परमेश्वर सरस्वती में प्रकाशित होती है। पंच परमेश्वर से लेकर कफन तक की कहानी यात्रा में प्रेमचंद युगीन परिवर्तन की दिशाओं को समेटकर चलते हैं। प्रसाद की कहानियों में युगीन परिस्थितियाँ भिन्न भाषा और शिल्प के कलेवर में रेखांकित होती है। कौशिक और सुदर्शन में प्रेमचन्द की बहिर्मुखी और प्रसाद की अन्तर्मुखी गति का मेल हो जाता है।

द्विवेदी युग आलोचना → हिन्दी आलोचना का वास्तविक एवं गम्भीर रूप द्विवेदी युग में न उभर सका। इस काल खण्ड में आलोचना की अनेक पद्धतियाँ विकसित हुई इस युग में आलोचना के पाँच रूप मिलते हैं।

1 शास्त्रीय आलोचना → अर्थात (i) लक्षण ग्रंथों की परम्परा में काव्यांगों का विवेचन (ii) तुलनात्मक आलोचना (iii) निर्णयात्मक आलोचना (iv) अनुसंधानपरक आलोचना (v) परिचयात्मक आलोचना। इनके साथ और भी आलोचना का रूप विकसित हुआ जिसे व्याख्यात्मक आलोचना कहते हैं। रीतिकाल में संस्कृत के आचार्यों के अनुकरण पर लक्षण ग्रंथ प्रस्तुत किये हैं। द्विवेदी युग में भी यह परम्परा जीवित रही। काव्य प्रभाकर छन्द सारावली एवं अलंकार मंजूषा इस परम्परा के उल्लेख्य ग्रंथ हैं।

2 तुलनात्मक आलोचना → इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति है। 1907 में पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी और सादी की तुलना द्वारा इस पद्धति का प्रारम्भ किया। सन 1910 में मिश्र बंधुओं का हिन्दी नवरत्न प्रकाशित हुआ। तुलनात्मक पद्धति में भी अपनायी गयी। आगे चलकर तुलनात्मक आलोचना की धूम मच गयी देव और बिहारी को एक दूसरे से बड़ा सिद्ध करने के लि

उद्देश्य से लाला भगवान दीन एवं कृष्णा बिहारी मिश्र ने देव तथा बिहारी की विशद समीक्षा प्रस्तुत की। तुलनात्मक दृष्टि बराबर बनी रही। अन्ततः एवं आत्मसंग्रहात्मक परक आलोचना द्विवेदी युग में नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रकाशन से विकसित होती है। मिश्रबंधुओं विनोद में भी शोध परक दृष्टि उभरती दिखायी देती है। इस पुस्तक में प्राप्य एवं अप्राप्य पुस्तकों की सूचना है बहुत संचित है। साथ काव्य के सम्बंध में भी महाकाव्यों का प्रकाशन भी मिश्र बंधुओं के अंतर इस युग में बाबू श्याम सुंदर दास, राधा कृष्ण दास, जगन्नाथ रत्नाकर एवं सुधाकर द्विवेदी ने अपने लेखों के द्वारा शोध परक आलोचना की जाती। इन्हें के सभी आलोचक नागरी प्रचारिणी पत्रिका से सम्बंध रहे। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 1902 ई० में जयपुर से समालोचक नाम के पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अधिक दिनों तक यह पत्र चल न सका किन्तु इसकी आलोचना पद्धति निश्चय उच्च स्तर की थी। भारतेन्दु युग से ही परिचयात्मक आलोचना का प्रारम्भ हो जाता है। सरस्वती के प्रकाशन से यह समीक्षा पद्धति और भी समृद्ध हुई। इसमें गम्भीरता और स्पष्टता का समावेश हुआ। इस आलोचना पद्धति में आलोच्य ग्रंथ के सामान्य परिचय के साथ साथ प्रशंसा एवं निन्दा का स्वर भी अनुगुंजित था और सैद्धान्तिक परिचयों में कृति को समझाने की चेष्टा भी थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के माध्यम से परिचयात्मक समीक्षा लिखने पर पत्रकारिता से पृथक आलोचना को मानक रूप स्थापित न हो सका। इसे द्विवेदी युग के आलोचक की सीमा कहा जा सकता है। समालोचक के भाव न व्यापार पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने जो लिखा —— "किसी पुस्तक या प्रबंध में क्या लिखा गया है किस ढंग से लिखा गया है वह विषय उपयोगी है या नहीं उससे किसी मनोरंजन हो सकता है या नहीं उस से किसी को लाभ पहुंच सकता है या नहीं यही विचारणीय विषय है।

समालोचक की प्रधानता इसी विषय पर विचार करना चाहिए। द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में आलोच्य कृति की नैतिक सामाजिक सांस्कृतिक राष्ट्रीय एवं सौन्दर्य बोधक के आधार पर व्याख्यात्मक आलोचना लिखी गई है। इस पद्धति में किसी रूप के अनुसरण का प्रयास न था। जहाँ कहीं भी परिचयात्मक आलोचना में विभाजता आई है। वहाँ वह व्याख्यात्मक आलोचना बन गई है। लाला सिताराम के नाटक संयोगिता स्वयंवर पर बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, की आनन्द कादम्बिनी में लिखी गई आलोचना से यह पद्धति और भी सम्बंधित हुई। बालमुकुन्द गुप्त से सम्पोषित होकर और आगे चलकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचनाओं में इस पद्धति का वैज्ञानिक रूप अपने पूरे संदर्भ में निश्चित हो सका। इस युग की आलोचना की दो प्रवृत्तियाँ हैं —

1. परम्परागत शास्त्रीय आधार
2. नैतिक ~~[illegible]~~ सामाजिक मान्यों से प्रभावित आधार पर गुण दोष का वर्णन एवं श्रेष्ठता तथा हीनता की घोषणा ही आलोचना की प्रमुख प्रवृत्ति बनी रही॥